IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिंदी भाषा: भारतीय ज्ञान प्रणालियों की वाहिका एक वैचारिक अन्वेषण

डॉ. नूतन सतपथी

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग

संबलपुर विश्वविद्यालय, ज्योति विहार, बुर्ला, ७६८०१९, ओडिशा, भारत

सारांश: भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ (भा.ज्ञा.प्र.) एक विशाल, बहुआयामी बौद्धिक विरासत का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिसमें दर्शन, विज्ञान, सौंदर्यशास्त्र, नैतिकता और सामाजिक चिंतन सम्मिलित हैं। भारत की सर्वाधिक व्यापक और ऐतिहासिक रूप से समृद्ध भाषाओं में से एक हिंदी, केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं रही, बल्कि यह इस ज्ञान-विरासत का एक जीवंत कोश भी रही है। प्रस्तुत वैचारिक शोधपत्र हिंदी भाषा और भारतीय ज्ञान प्रणालियों के बीच जटिल संबंध का परीक्षण करता है। यह अन्वेषण इस बात पर केंद्रित है कि हिंदी साहित्य, मौखिक परंपराएँ, दार्शनिक विमर्श और भाषायी संरचनाएँ किस प्रकार स्वदेशी ज्ञानमीमांसात्मक ढाँचों को धारण, संप्रेषित और नवीनीकृत करती हैं। शास्त्रीय ग्रंथों, मध्यकालीन भक्ति काव्य और आधुनिक साहित्यिक परंपरा के आधार पर यह शोधपत्र तर्क देता है कि हिंदी भा.ज्ञा.प्र. की वाहिका भी है और उसकी सहनिर्मात्री भी। शोधपत्र में राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के भा.ज्ञा.प्र. को उच्च शिक्षा में समाकलित करने के आह्वान तथा हिंदी अध्ययन पर उसके निहितार्थों पर भी विचार किया गया है। यह अध्ययन वैचारिक प्रकृति का है और दस्तावेज़ी एवं पाठ विश्लेषण पर आधारित है।

मुख्य शब्द-*भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ, हिंदी भाषा, भक्ति आंदोलन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०, लोक परंपरा, स्वदेशी ज्ञानमीमांसा, संस्कृत-हिंदी निरंतरता।*

१. प्रस्तावना

भारत उन विरल सभ्यताओं में से एक है जिसने पाँच हज़ार से भी अधिक वर्षों तक बौद्धिक अन्वेषण, कलात्मक अभिव्यक्ति और व्यवस्थित ज्ञान-निर्माण की अखंड परंपरा को जीवित रखा है। इस बौद्धिक विरासत को अब 'भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ' (भा.ज्ञा.प्र.) के व्यापक नाम से जाना जाता है। यह ज्ञान-संपदा केवल संस्कृत में या ब्राह्मणिक परंपरा के शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित नहीं है। यह भारत की लोकभाषाओं में गहराई से अंतर्निहित है — भटकते संतों के गीतों में, गाँव के बुजुर्गों की पहेलियों में, संध्या बेला में माताओं द्वारा कही जाने वाली कहानियों में, और मध्यकालीन रहस्यवादी कवियों की जटिल आध्यात्मिक कविता में। इन लोकभाषा परंपराओं में हिंदी का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है — न केवल उसके विशाल भौगोलिक विस्तार के कारण, बल्कि इसलिए भी कि शताब्दियों में इस भाषा में जो दार्शनिक और साहित्यिक समृद्धि संचित हुई है, वह अतुलनीय है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० ने भा.ज्ञा.प्र. को शैक्षिक विमर्श के केंद्र में पुनः प्रतिष्ठित किया है। इस नीति में विज्ञान और प्रौद्योगिकी से लेकर सामाजिक विज्ञान और मानविकी तक सभी विषयों में भा.ज्ञा.प्र. के समाकलन का निर्देश दिया गया है (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, २०२०)। हिंदी के शिक्षकों और विद्वानों के लिए यह नीतिगत क्षण एक साथ अवसर भी है और चुनौती भी — अवसर इस अर्थ में कि एक ऐसी भाषा की ज्ञानमीमांसात्मक गरिमा को पुनः प्रतिपादित किया

जाए जिसे कभी-कभी संस्कृत की शास्त्रीय प्रतिष्ठा या अंग्रेज़ी के औपनिवेशिक वर्चस्व के सापेक्ष 'केवल देशी भाषा' के रूप में देखा जाता रहा है।

प्रस्तुत शोधपत्र इस संबंध का एक वैचारिक अन्वेषण है। यह शोधपत्र शेल्डन पोलक (पोलक, २००६) के उस तर्क पर आधारित है जिसके अनुसार भारत की लोकभाषाएँ संस्कृत की व्युत्पन्न नहीं थीं, बल्कि उन्होंने अपनी विशिष्ट ज्ञानमीमांसात्मक और सौंदर्यशास्त्रीय परियोजनाएँ विकसित कीं — परियोजनाएँ जो प्रायः शास्त्रीय परंपरा के साथ सृजनशील संवाद में और कभी-कभी उत्पादक तनाव में थीं।

२. भारतीय ज्ञान प्रणालियों की अवधारणा

'भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ' (भा.ज्ञा.प्र.) पद को राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के प्रकाशन के बाद से भारत में महत्त्वपूर्ण संस्थागत गति मिली है, यद्यपि स्वदेशी ज्ञान को पुनः प्राप्त करने और व्यवस्थित करने की बौद्धिक परियोजना का इतिहास कहीं अधिक पुराना है। यह परंपरा कम से कम उन्नीसवीं सदी के नवजागरण विचारकों — राम मोहन राय, बाल गंगाधर तिलक, स्वामी विवेकानंद और अन्य — से जुड़ी है।

विद्वानों ने भा.ज्ञा.प्र. को विविध रूपों में परिभाषित किया है। बेबर (बेबर, १९९६) इसे भारतीय सभ्यता द्वारा गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, दर्शन, व्याकरण और कलाओं सहित विविध क्षेत्रों में अवलोकन, अनुभव और चिंतन के माध्यम से संचित ज्ञान का व्यवस्थित निकाय मानते हैं। नागराजू (नागराजू, २०२०) भा.ज्ञा.प्र. को अधिक व्यापक रूप में परिभाषित करते हैं — न केवल औपचारिक पाठ्य ज्ञान, बल्कि वह अनौपचारिक, मूर्त और सामुदायिक ज्ञान भी जो पारिस्थितिक और सामाजिक जीवन को संधारणीय बनाता है। शिक्षा मंत्रालय के भा.ज्ञा.प्र. प्रभाग ने इसे शास्त्रीय ग्रंथों, मौखिक परंपराओं, प्रदर्शन कलाओं और जानने के उन तरीकों में निहित ज्ञान परंपराओं के रूप में परिभाषित किया है (अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, २०२१)।

भा.ज्ञा.प्र. को समझने में एक महत्त्वपूर्ण विभेद प्रस्तावात्मक ज्ञान और प्रक्रियात्मक या मूर्त ज्ञान के बीच है। यह विभेद संस्कृत की श्रेणियों — ज्ञान और विज्ञान — तथा शास्त्र और लोक के विभेद से सम्बद्ध है। हिंदी की साहित्यिक और मौखिक परंपराएँ दोनों आयामों को समेटती हैं: कबीर की दार्शनिक कविताएँ ज्ञान से जुड़ती हैं; छत्तीसगढ़ या ब्रज के कृषि गीत पारिस्थितिक विज्ञान को मूर्त रूप देते हैं; और तुलसीदास की रामचरितमानस शास्त्र और लोक को एक ऐसे संश्लेषण में एकीकृत करती है जिसने उत्तरी और मध्य भारत में पाँच शताब्दियों तक नैतिक और सौंदर्यबोध को आकार दिया है (लुटगेंडॉर्फ, १९९१)।

भा.ज्ञा.प्र. को एक संरचना के रूप में देखने की आलोचनाओं को भी स्वीकार करना महत्त्वपूर्ण है। सुंदर सरुक्काई (सरुक्काई, २०१२) ने ध्यान दिलाया है कि 'भारतीय ज्ञान' को संस्थागत रूप देने की प्रक्रिया एक एकरंगी, ब्राह्मणिक और संभावित रूप से हिंदुत्ववादी कैनन बना सकती है जो दलितों, आदिवासियों, महिलाओं और अन्य हाशिए के समुदायों की ज्ञान परंपराओं को बाहर कर देती है। यह आलोचना हिंदी अध्ययन के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है, क्योंकि हिंदी के मानकीकरण की अपनी जटिल राजनीति है जिसने प्रायः संस्कृतनिष्ठ, उच्च-वर्गीय रजिस्टर को विशेषाधिकार दिया है (राय, २०००)।

३. संस्कृत-हिंदी निरंतरता: शास्त्रीय विरासत और रूपांतरण

भा.ज्ञा.प्र. के साथ हिंदी के संबंध का कोई भी विवरण उसके संस्कृत के साथ जटिल संबंध से आरंभ होना चाहिए। ऐतिहासिक रूप से हिंदी, संस्कृत का सरलीकृत रूप नहीं है। जैसा कि कार्डोना और जैन (कार्डोना एवं जैन, २००३) बताते हैं, उत्तर भारत की आधुनिक इंडो-आर्यन भाषाएँ अपभ्रंश बोलियों, फ़ारसी-अरबी शब्द-भंडार और संस्कृत की प्रतिष्ठा-भाषा के बीच जटिल अंतःक्रिया के माध्यम से मध्यकालीन सल्तनत और मुग़ल काल की सामाजिक-भाषायी गतिशीलता से मध्यस्थ होकर विकसित हुई हैं।

दर्शन के छह आस्तिक संप्रदाय — न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और वेदांत — हिंदी गद्य और पद्य में अनूदित, व्याख्यायित और पुनर्व्याख्यायित होते रहे हैं। वेदांत की ब्रह्म अवधारणा, सांख्य का पुरुष-प्रकृति विभेद और पातंजल योगसूत्रों का योग-ढाँचा — ये सभी मध्यकालीन हिंदी कवियों और आधुनिक दार्शनिक लेखकों की रचनाओं में अभिव्यक्ति पाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस (रचनाकाल लगभग १५७४ ईस्वी) शायद शास्त्रीय ज्ञान के लोकभाषा हिंदी मुहावरे में संचरण का सबसे महत्त्वपूर्ण एकल ग्रंथ है। जैसा कि लुटगेंडॉर्फ (लुटगेंडॉर्फ, १९९१) ने अपने महत्त्वपूर्ण अध्ययन में प्रलेखित किया है, रामचरितमानस केवल रामायण का भक्तिमूलक पुनः कथन नहीं है; यह एक व्यापक नैतिक, दार्शनिक और सामाजिक विश्वकोश है जिसने लगभग पाँच शताब्दियों तक हिंदीभाषी जगत में धर्म, कर्म, आदर्श राजत्व, पारिवारिक संबंधों और भक्ति अभ्यास की अवधारणाओं को आकार दिया है।

कबीर का बीजक — जो कबीरपंथ का प्रमुख ग्रंथ है — वेदांत, सूफी, नाथपंथी और तांत्रिक परंपराओं से संलग्न होकर उन्हें एक कट्टरपंथी आलोचना में संश्लेषित करता है जो कर्मकांडी धर्म पर प्रहार करती है और प्रत्यक्ष, अव्यवधानित आध्यात्मिक अनुभव का उत्सव मनाती है (हॉले एवं युअरगेन्समेयर, १९८८)। कबीर की ज्ञान-मीमांसा शास्त्रीय प्राधिकार के स्थान पर प्रत्यक्ष अनुभव को वरीयता देती है — एक ऐसी स्थिति जो समकालीन शैक्षिक विमर्श में पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान की आलोचना की पूर्वाभास देती है।

४. भक्ति आंदोलन: ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का केंद्र

भक्ति आंदोलन, जो लगभग सातवीं से सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी तक भारत भर में फला-फूला, भारतीय इतिहास में बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन के सबसे महत्त्वपूर्ण अध्यायों में से एक है। हिंदी क्षेत्र में भक्ति आंदोलन ने संत-कवियों की एक उल्लेखनीय आकाशगंगा उत्पन्न की — कबीर, सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रविदास, दादू दयाल और अनेक अन्य — जिनकी रचनाएँ केवल महान साहित्य नहीं, बल्कि गंभीर दार्शनिक और नैतिक चिंतन भी हैं।

भा.ज्ञा.प्र. के दृष्टिकोण से भक्ति आंदोलन कम से कम तीन कारणों से महत्त्वपूर्ण है। प्रथमतः, इसने उस दार्शनिक और धर्मशास्त्रीय ज्ञान तक पहुँच का लोकतंत्रीकरण किया जो ब्राह्मणिक विशेषज्ञों का अधिकार-क्षेत्र था। लोकभाषा हिंदी और उसकी बोलियों — ब्रज भाषा, अवधी, मैथिली — में रचना करके भक्ति कवियों ने ईश्वर की प्रकृति, आत्मा, मुक्ति और भक्ति पर परिष्कृत विमर्श को उन श्रोताओं तक सुलभ कराया जिनकी संस्कृत शिक्षा तक कोई पहुँच नहीं थी। यह एक क्रांतिकारी ज्ञानमीमांसात्मक परिवर्तन था (लोरेन्ज़ेन, १९९५)।

द्वितीयतः, भक्ति कवि केवल विद्यमान ज्ञान के लोकप्रियकर्ता नहीं थे; वे मौलिक चिंतक थे जिन्होंने नई ज्ञानमीमांसात्मक ढाँचे रचे। कबीर की 'सहज' अवधारणा उच्चतम ज्ञान के रूप में, मीराबाई की मुक्ति के मार्ग के रूप में प्रेम की स्त्रीवादी धर्मशास्त्र, और रविदास का दलित गरिमा को आध्यात्मिक सद्गुण के रूप में क्रांतिकारी प्रतिपादन — ये सभी भा.ज्ञा.प्र. में वास्तविक योगदान हैं। हॉले (हॉले, २०१५) भक्ति आंदोलन को भारतीय धर्म और संस्कृति को रूपांतरित करने वाला 'तूफान' कहते हैं।

तृतीयतः, भक्ति आंदोलन ने स्वयं भाषा का एक परिष्कृत दर्शन विकसित किया। गुरु का वचन (शब्द या बाणी) आत्मिक शक्ति से आवेशित माना जाता था जो चेतना को रूपांतरित कर सकता था। भाषा का यह दर्शन समकालीन ज्ञानमीमांसा में 'भाषायी मोड़' पर चर्चाओं से प्रभावशाली ढंग से गूँजता है (गोल्ड, २०१०)।

५. लोक परंपराएँ: मौखिक साहित्य, लोक ज्ञान और पारिस्थितिक बुद्धि

पाठ्य और भक्ति परंपराओं से परे, भा.ज्ञा.प्र. के साथ हिंदी का संबंध संभवतः सबसे प्राणवंत रूप से हिंदी क्षेत्र के मौखिक साहित्य और लोक परंपराओं के विशाल भंडार में अभिव्यक्त होता है। इन परंपराओं में — लोकगीत, लोककथा, कहावतें, पहेलियाँ और अनुष्ठानिक प्रदर्शन — कृषि, पारिस्थितिकी, मानव विकास, सामाजिक संबंधों, चिकित्सा और नीतिशास्त्र के क्षेत्र में सामुदायिक ज्ञान का एक जीवंत पुरालेख निहित है।

भारत में लोकसाहित्य अध्ययन की एक लंबी और प्रतिष्ठित परंपरा है जो सत्येंद्र (सत्येंद्र, १९७२) जैसे अग्रणी विद्वानों के कार्य से प्रारंभ होती है। हिंदी लोकसाहित्य अध्ययन ने कृषि जैसे क्षेत्रों में मौखिक ज्ञान परंपराओं की उल्लेखनीय परिष्कृतता को प्रलेखित किया है — जहाँ पारंपरिक फसल किस्मों, मौसमी चक्रों और जल प्रबंधन की विधियाँ गीतों और कहावतों में संकोडित हैं; चिकित्सा में, जहाँ औषधीय पौधों, आहार विधियों और उपचार अनुष्ठानों का ज्ञान मौखिक साहित्य द्वारा संप्रेषित होता है।

हिंदी लोक परंपराओं के पारिस्थितिक आयाम समकालीन पर्यावरणीय चिंताओं के संदर्भ में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। वंदना शिवा (शिवा, १९८८) ने तर्क दिया है कि पारंपरिक भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ प्रकृति के साथ मूलतः भिन्न संबंध

को मूर्त रूप देती हैं — श्रद्धा, पारस्परिकता और इस समझ पर आधारित कि मनुष्य प्रकृति के स्वामी नहीं बल्कि उसके सहभागी हैं। यह पारिस्थितिक दर्शन हिंदी क्षेत्र में नदियों, वनों और कृषि चक्रों से जुड़े लोकगीतों और अनुष्ठानों में जीवंत रूप से अभिव्यक्त होता है।

रामविलास शर्मा (शर्मा, १९८५), हिंदी साहित्य आलोचना के सबसे बड़े स्तंभों में से एक, ने तर्क दिया कि हिंदी क्षेत्र की लोक परंपराएँ पिछड़ेपन का अवशेष नहीं बल्कि एक परिष्कृत जनसंस्कृति हैं जिसने समुदायों को शताब्दियों के सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल से गुज़ारा है।

६. हिंदी साहित्य के नैतिक और दार्शनिक आयाम

हिंदी साहित्य, अपने प्रारंभिक रूपों से लेकर वर्तमान तक, नीतिशास्त्र, सामाजिक न्याय और मानव-कल्याण के प्रश्नों से गहराई से संलग्न रहा है — ये प्रश्न एक आदर्शप्रधान परियोजना के रूप में भा.ज्ञा.प्र. के केंद्र में हैं। धर्म की अवधारणा — जो ढीले ढंग से उचित आचरण, कर्तव्य या ब्रह्मांड की नैतिक व्यवस्था के रूप में अनूदनीय है — तुलसीदास की रामचरितमानस से लेकर प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यासों तक हिंदी साहित्य में एक व्यापक विषय है।

प्रेमचंद (धनपत राय श्रीवास्तव, १८८०-१९३६), जिन्हें हिंदी और उर्दू का सबसे महान उपन्यासकार माना जाता है, हिंदी और उर्दू साहित्यिक परंपराओं की नैतिक विरासत को औपनिवेशिक भारत की सामाजिक वास्तविकताओं — जाति उत्पीड़न, ग्रामीण गरीबी, स्त्री-दमन और सांप्रदायिक संघर्ष — पर केंद्रित करते हैं। उनकी कथा-साहित्य को भा.ज्ञा.प्र. की अनेक धाराओं के साथ निरंतर संलाप के रूप में पढ़ा जा सकता है — भक्ति परंपरा की करुणा और समता पर बल, लोकसंग्रह की शास्त्रीय अवधारणा, और स्वामी विवेकानंद जैसी विभूतियों का सुधारवादी मानवतावाद (राय, १९८२)।

बीसवीं शताब्दी का हिंदी साहित्यिक आंदोलन जिसे प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है — नागार्जुन, मुक्तिबोध और सुमित्रानंदन पंत जैसे लेखकों से जुड़ा — भा.ज्ञा.प्र. की विरासत और पश्चिमी मार्क्सवादी परंपरा दोनों के साथ आलोचनात्मक संलग्नता प्रदर्शित करता है। मुक्तिबोध की जटिल दार्शनिक कविता चेतना, ज्ञान और सामाजिक रूपांतरण के प्रश्नों पर एक विशिष्ट भारतीय किंतु वैश्विक स्तर पर सूचित मुहावरे में विचार करती है (शुक्ल, २००५)।

हिंदी में समकालीन दलित साहित्य — ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय और सूरजपाल चौहान जैसे लेखकों द्वारा — भा.ज्ञा.प्र. और हिंदी के संबंध में एक और आयाम जोड़ता है। वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन (वाल्मीकि, २००३) न केवल दलित अनुभव का शक्तिशाली साक्ष्य है, बल्कि एक ज्ञानमीमांसात्मक दस्तावेज़ भी है — ऐसे जीवन और जानने के तरीके का अभिलेख जिसे परंपरागत शास्त्र और आधुनिक शैक्षणिक ज्ञान दोनों की प्रमुख आख्याओं से व्यवस्थित रूप से बाहर रखा गया है।

७. राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०, भा.ज्ञा.प्र. समाकलन और हिंदी अध्ययन का भविष्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० भा.ज्ञा.प्र. और उच्च शिक्षा के बीच संबंध में एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत हस्तक्षेप है। नीति में मानविकी और सामाजिक विज्ञान सहित सभी विषयों में भा.ज्ञा.प्र. के समाकलन का स्पष्ट निर्देश दिया गया है (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, २०२०)। एक अनुशासन के रूप में हिंदी अध्ययन के लिए ये अनिवार्यताएँ अवसर और दायित्व दोनों प्रस्तुत करती हैं।

अवसर यह है कि हिंदी परंपरा की ज्ञानमीमांसात्मक समृद्धि को पुनः प्राप्त और अभिव्यक्त किया जाए। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद, २०२१) ने भारतीय ज्ञान प्रणालियों पर एक पाठ्यक्रम विकसित किया है जो अब तकनीकी और उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रारंभ किया जा रहा है और जिसमें संस्कृत स्रोतों के साथ-साथ लोकभाषा परंपराओं को स्पष्ट रूप से सम्मिलित किया गया है।

दायित्व यह है कि भा.ज्ञा.प्र. एजेंडे के साथ आलोचनात्मक रूप से संलग्न हुआ जाए। हिंदी विद्वानों को सरुक्काई (सरुक्काई, २०१२) और अन्य के साथ आग्रह करना होगा कि एक वास्तव में समावेशी भा.ज्ञा.प्र. में अभिजात वर्ग के साथ-साथ हाशिए के समुदायों की, पाठ्य के साथ-साथ मौखिक की, और मानक के साथ-साथ विद्रोही ज्ञान परंपराओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

भा.ज्ञा.प्र. शिक्षाशास्त्र के लिए देशपांडे (देशपांडे, २०१६) ने एक 'संवादात्मक' दृष्टिकोण का समर्थन किया है जो छात्रों की अपनी ज्ञान पृष्ठभूमि और उनके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले पाठों के बीच मुलाकात को अग्रभूमि में रखता है — एक दृष्टिकोण जो पाउलो फ्रेयर की संवादात्मक शिक्षा की अवधारणा और भक्ति परंपरा के गुरु-शिष्य संवाद से गूँजता है।

८. चुनौतियाँ और आगे का मार्ग

हिंदी और भा.ज्ञा.प्र. को एक सुदृढ़ और समावेशी तरीके से एकीकृत करने की परियोजना के सामने कई महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। प्रथमतः, अनुवाद और तुलनीयता की चुनौती है। भा.ज्ञा.प्र. की अनेक प्रमुख अवधारणाओं — धर्म, कर्म, रस, अहिंसा, मोक्ष, लोक — के वैश्विक शिक्षाजगत में सीधे समकक्ष नहीं हैं। हिंदी विद्वानों की सुगम, सटीक और दार्शनिक रूप से संवेदनशील अनुवाद एवं टिप्पणियाँ विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी।

द्वितीयतः, प्रामाणिकता बनाम नवोन्मेष की चुनौती है। भा.ज्ञा.प्र. विमर्श में एक प्रमुख तनाव पारंपरिक ज्ञान को संरक्षित और संप्रेषित करने की आवेग और इस पहचान के बीच है कि ज्ञान प्रणालियाँ हमेशा विकसित होती रहती हैं। हिंदी साहित्य स्वयं इस तथ्य का प्रमाण है कि भा.ज्ञा.प्र. के साथ सबसे प्राणवंत संलग्नता संरक्षणवादी नहीं बल्कि सृजनशील और आलोचनात्मक रही है।

तृतीयतः, संस्थागत समर्थन की चुनौती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० की नीतिगत प्रतिबद्धताओं के बावजूद, भारतीय विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में भा.ज्ञा.प्र. शोध और शिक्षण के लिए उपलब्ध संसाधन सीमित हैं। व्यवस्थित पाठ्यक्रम संशोधन, संकाय विकास और शोध वित्तपोषण आवश्यक होगा (कुमार, २०१९)।

आगे का मार्ग सहयोगी विद्वत्ता पर आधारित होना चाहिए — हिंदी साहित्यिक विद्वानों, भाषाविदों, लोकसाहित्यविदों, दार्शनिकों और सामाजिक वैज्ञानिकों को एकत्र करना जो हिंदी भाषा और साहित्य में अंतर्निहित भा.ज्ञा.प्र. के पूर्ण परिदृश्य का मानचित्रण कर सकें। इसमें समुदायों को भी शामिल करना होगा — लोक और मौखिक परंपराओं के जीवंत वाहकों को केवल शोध-विषय के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान-साझेदारों के रूप में संलग्न करना। और यह सामाजिक न्याय की प्रतिबद्धता से निर्देशित होना चाहिए।

९. उपसंहार

हिंदी भाषा केवल वह माध्यम नहीं है जिसके द्वारा भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ अभिव्यक्त होती हैं; वह स्वयं एक गतिशील स्थल है जहाँ भा.ज्ञा.प्र. उत्पन्न होती है, विवादित होती है, रूपांतरित होती है और नवीनीकृत होती है। शास्त्रीय संस्कृत-हिंदी निरंतरता से लेकर भक्ति संतों की क्रांतिकारी ज्ञान-मीमांसा तक, लोक परंपराओं की पारिस्थितिक प्रज्ञा से लेकर प्रेमचंद की सामाजिक नीतिशास्त्र और दलित साहित्य के प्रति-ज्ञान तक, हिंदी ज्ञान के बहुवचनी तरीकों को समेटती है जो एक समृद्ध और जटिल बौद्धिक विरासत का निर्माण करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के परिप्रेक्ष्य में भा.ज्ञा.प्र. पर नए सिरे से बल देना हिंदी अध्ययन को इस विरासत को अभिव्यक्त करने और दावा करने का एक महत्त्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है — न एक बंद और पूर्ण इमारत के रूप में, बल्कि एक जीवंत परंपरा के रूप में। यह अवसर आलोचनात्मक कठोरता, ऐतिहासिक ईमानदारी और समावेशिता की प्रतिबद्धता के साथ ग्रहण किया जाना चाहिए।

इक्कीसवीं सदी में हिंदी विद्वानों के सामने यही कार्यभार है: वे ठीक वैसे हों जैसा कबीर ने एक बार आकांक्षा की थी — पहले से जलाए दीपक के केवल रक्षक नहीं, बल्कि वे जो हवा में भी उस लौ को जीवित रखते हैं — अतीत की विरासत की देखभाल करते हुए उस नए प्रकाश के प्रति खुले रहते हुए जो वर्तमान सदा लेकर आता है।

संदर्भ सूची

1. अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद. (२०२१). भारतीय ज्ञान प्रणाली (भा.ज्ञा.प्र.) पाठ्यक्रम. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार.
2. कार्डोना, जी., एवं जैन, डी. (संपा.). (२००३). इंडो-आर्यन भाषाएँ. राउटलेज.
3. कुमार, कृ. (२०१९). शांति की शिक्षाशास्त्र: शिक्षा और ज्ञान का संकट. ओरिएंट ब्लैकस्वान.
4. गोल्ड, डी. (२०१०). राजस्थानी परंपराओं में कबीर के गृहस्थों के रहस्य. के. शॉमर एवं डब्ल्यू. एच. मैकलियॉड (संपा.), द संट्स: भारत की भक्ति परंपरा में अध्ययन (पृ. ११५-१३८). मोतीलाल बनारसीदास.
5. देशपांडे, स. (२०१६). जाति की समस्या. ओरिएंट ब्लैकस्वान.
6. नागराजू, ग. (२०२०). भारतीय ज्ञान प्रणालियाँ: दर्शन और व्यवहार. विताश्ता पब्लिशिंग.
7. पोलक, श. (२००६). मनुष्यों के संसार में देवताओं की भाषा: संस्कृत, संस्कृति और पूर्वआधुनिक भारत में सत्ता. कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस.
8. बेबर, ज़. (१९९६). साम्राज्य का विज्ञान: वैज्ञानिक ज्ञान, सभ्यता और भारत में औपनिवेशिक शासन. स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू यॉर्क प्रेस.
9. राय, अ. (१९८२). प्रेमचंद: एक जीवन (वी. नारंग, अनु.). पीपल्स पब्लिशिंग हाउस.
10. राय, अ. (२०००). एक विभाजित घर: हिंदी/हिंदवी का उद्गम और विकास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
11. लुटगेंडॉर्फ, फि. (१९९१). एक पाठ का जीवन: तुलसीदास की रामचरितमानस का प्रदर्शन. कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस.
12. लोरेन्ज़ेन, डी. एन. (१९९५). उत्तर भारत में भक्ति धर्म: सामुदायिक पहचान और राजनीतिक कार्रवाई. स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू यॉर्क प्रेस.
13. वाल्मीकि, ओ. (२००३). जूठन: एक दलित का जीवन (ए. पी. मुखर्जी, अनु.). कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस. (मूल कृति प्रकाशन वर्ष १९९७)
14. शर्मा, रा. (१९८५). हिंदी साहित्य और उसकी समस्याएँ. राजकमल प्रकाशन.
15. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (२०२०). राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०. भारत सरकार.
16. शिवा, व. (१९८८). जीवित रहना: भारत में महिलाएँ, पारिस्थितिकी और अस्तित्व. काली फॉर विमेन.
17. शुक्ल, स. (२००५). मुक्तिबोध: रचना की प्रक्रिया. वाणी प्रकाशन.
18. सत्येंद्र. (१९७२). लोक साहित्य का स्वरूप. हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग.
19. सरुक्काई, सु. (२०१२). भारतीय दर्शन और विज्ञान का दर्शन मोतीलाल बनारसीदास.
20. हॉले, जे. एस. (२०१५). गीतों का तूफान: भारत और भक्ति आंदोलन की अवधारणा. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
21. हॉले, जे. एस., एवं युअरगेन्समेयर, म. (१९८८). भारत के संतों के गीत. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.